पंचम अध्याय

कथाकार काशीनाथ सिंह के पात्रों का सामाजिक यथार्थ के आईने में वर्गगत अध्ययन

पंचम अध्याय

काशीनाथ सिंह के पात्रों का सामाजिक यथार्थ के आईने में वर्गगत अध्ययन

5.1. काशीनाथ सिंह के पात्रों का समाज:

जिस समाज से काशीनाथ सिंह की रचनाओं के पात्र आते हैं, वे किसी काल्पनिक दुनिया के न हो कर हमारे आस-पास और पड़ोस के समाज के ही लगते हैं। गाहे-बगाहे उनके पात्रों में प्रेमचन्द के पात्रों का अक्स साफ-साफ झलकता है। काशीनाथ सिंह के पात्र उनके अगल-बगल और पास-पड़ोस में विचरने वाले आमजन हैं, जो कहीं चाय पीते हुए या किसी को गरियाते-लतियाते मिल जाएंगे। काशीनाथ सिंह के पात्र हाड़-मांस के बने आम आदमी हैं, जो सीधे-सादे सरल व्यक्तित्व के साथ-साथ ग्रामीणता और लंठई का दामन पकड़े रहते हैं। ऐसे पात्र काशी (बनारस) की हर गली में मिल जायेंगे, जो किसी के सामने मिमियाते, घिघियाते दृष्टिगोचर होंगे तो कहीं किसी की माँ-बहन से अपना संबंध जोड़ते नजर आयेंगे। इनके पात्र एकदम ठेठ और खाँटी हैं। इस संदर्भ में एक उदाहरण दृष्टव्य है- *"खड़ाऊँ पहने, पाँव लटकाए पान की दुकान पर बैठे तन्नी गुरु से एक आदमी बोला-'किस दुनिया में हो गुरु! अमरीका रोज-रोज आदमी को चन्द्रमा पर भेज रहा है और तुम घंटे भर से पान घुला रहे हो?' मोरी में 'पच्' से पान की पीक थूककर गुरु बोले-*

'देखो! एक बात नोट कर लो! चन्द्रमा हो या सूरज-भोंसड़ी के, जिसको गरज होगी, खुदै यहाँ आएगा। तन्नी गुरु टस-से-मस नहीं होंगे हियाँ से! समझे कुछ?"[1] मतलब साफ है अमेरिका अपनी जगह है और अमेरिका को जो करना है करे, उससे इन पात्रों को कुछ लेना-देना नहीं हैं। ये अपने यहाँ के महामहिम स्वयं हैं। ये पात्र आधुनिकता और उसके आधुनिक संयंत्र की ऐसी की तैसी करते नजर आते हैं । किसी का कोई डर-भय नहीं। कहीं जाने और कुछ पाने की जल्दी नहीं। जहाँ हैं, वहीं खुश हैं। काशीनाथ सिंह अपने पात्रों के बारे में अपनी राय देते हुए कहते हैं- *"मेरी कहानी में आनवाले पात्र उस टूटती हुई सामंतवादी व्यवस्था में, जिससे वे निकलना चाहते हैं और जो नई बनती हुई पूंजीवादी व्यवस्था है, जिसमें वे अपने आप को बराबर मिसफिट पाते हैं, संतुष्ट नहीं हैं। इन दोनों की टकराहट की उपज हैं मेरे पात्र।"*[2] लेखक की यह युक्ति और भी प्रमाणित जान पड़ती है, जब हम 'मुसइ चा', 'ढुक्कूलाल', 'सुधीर घोषाल' आदि जैसे पात्रों से रू-ब-रू होते हैं।

काशीनाथ सिंह के पात्र किसी भी तरीके से भगोड़े साबित नहीं होते। अंत तक लड़ने, संघर्ष करने की कुव्वत उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। ये पात्र सामंतवाद और पूंजीवाद की टकराहट से उत्पन्न हैं, जो न तो शहर के हो पाए हैं, न ही अपने गाँव को भुला पाए हैं। इस संदर्भ में कथाकार काशीनाथ सिंह के पात्रों के बारे में अपनी राय व्यक्त करते हुए प्रफुल्ल कोलख्यान लिखते हैं-"*काशीनाथ सिंह की शैली के वैशिष्ट्य पर ध्यान देने से सबसे पहले*

यह बात समझ में आती है कि काशीनाथ सिंह के पात्र अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ ही कथा-पटल पर आमद होते हैं। ये पात्र कभी भी अपनी भूमिका के किसी पक्ष के एक ही रूप में सीमित नहीं रहते हैं। जब ये पात्र शिक्षक के रूप में होते हैं, तब वह पिता, भाई, मित्र, नागरिक आदि को स्थगित रखकर या अनुपस्थित कर बना हुआ शिक्षक नहीं होता है। जब वह वर्तमान में होता है, तो वह अतीत या भविष्य को स्थगित कर वहाँ नहीं होता है। सार्वकालिकता और सार्वदेशिकता की निजगत और समष्टिगत अविकल उपस्थिति इन पात्रों की विशिष्टता है। वे कथा में वैसे ही होते हैं जैसे कि जीवन में हो सकते हैं।"[3] कहना न होगा कि कोलख्यान जी की यह उक्ति काशीनाथ सिंह के साहित्य में उनके पात्रों को संपूर्णता में देखने की चेष्टा का उदाहरण है। वास्तविकता यह है कि ये पात्र उसी समाज के लोग हैं, जिसका संबंध हमसे है। इसलिए इन पात्रों में कहीं-न-कहीं हम और हमारा समाज भी जीवित है। इनमें वे सारे आग्रह-पूर्वाग्रह दिखते हैं, जिनसे हमारे समाज के विविध वर्गों, जातियों, संप्रदायों तथा लिंगों का ताल्लुक है।

5.2.काशीनाथ सिंह के कथा-साहित्य में लैंगिक स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

काशीनाथ सिंह अपनी रचनाओं में पात्रों का चयन करते वक्त बहुत ही सावधानी बरतते हैं और इस संदर्भ में उन्होंने अपनी साहित्यिक समझदारी का सुंदर परिचय दिया है। जहां तक प्रश्न लैंगिक स्तर पर पात्रों

के वर्गीकरण का है तो वहां परंपरागत रूप से स्त्री और पुरुष पात्र ही मौजूद हैं। हिंदी पट्टी से होने के बावजूद उनकी रचनाओं में जितना महत्व पुरुष पात्रों को मिला है, संख्या में कम होने के बावजूद स्त्री पात्रों को उससे कम महत्व नहीं मिला है। काशीनाथ सिंह की रचनाओं के पात्र अपने-अपने वर्गों और स्तरों पर अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वाह बखूबी करते नजर आते हैं। काशीनाथ सिंह की कहानियों में जहाँ एक तरफ भोला बाबू, मोहन, ज्वान, सुधीर घोषाल, मुसइ चा, ढुक्कूलाल जैसे पुरुष पात्र नजर आते हैं, वहीं स्त्री-पात्रों में 'सोना', 'पायल पुरोहित' की 'पायल पुरोहित' उर्फ 'रेशमा' और 'चायघर में मृत्यु' की बुआ भी आती हैं। दूसरी तरफ उनके उपन्यासों में प्रो. रघुनाथ (रेहन पर रग्घू), धर्मनाथ शास्त्री (कासी का अस्सी) के साथ 'महुआ चरित' की महुआ स्त्री-पात्रों की नुमाइंदगी करती नजर आती है। काशीनाथ सिंह के पात्रों के संदर्भ में उदय प्रकाश लिखते हैं- *"काशीनाथ सिंह की कहानियों के जिक्र के साथ ही कुछ चरित्र अनिवार्यतः याद आते हैं-जैसे ज्वान, सुधीर घोषाल, मुसइ चा, मास्टर ढुक्कूलाल, जादू आदि-आदि। चरित्रों का निर्माण और सामाजिक मूल्यों का वैयक्तिकरण (पर्सोनिफ़िकेशन) सदा से कहानी का एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व रहा है। यह सही है कि ये चरित्र और इनकी चेतना सामाजिक यथार्थ और उस यथार्थ में उनकी स्थिति के द्वारा निर्धारित होती है लेकिन ये पात्र स्वयं में समग्र सामाजिक यथार्थ की कार्बन कॉपी नहीं होते, न ही हो सकते हैं।"*[4] काशीनाथ

सिंह अपने पात्र को ऐसी जगहों से उठाते हैं, जो सामाजिक यथार्थ की विडंबनाओं से भरी-पूरी हैं। उनके पात्र समस्याओं से संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं। तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं से दो-चार होते हुए भी उनमें जीवन जीने की जिजीविषा है। गांव और शहर की खाई को पाटने में ये सक्षम नहीं हैं और अपने आप को हो रहे इस बदलाव के सांचे में फिट नहीं कर पा रहे हैं। इसके अलावा व्यवस्था की मार तो अलग से है ही। काशीनाथ सिंह इस दर्द को अपनी कहानी 'दलदल' में व्यक्त करते नजर आते हैं-*"20-22 साल हुए, जब मैंने अपना गांव, अपनी जमीन छोड़ी थी। तब से लगातार यह शहर मुझे तोड़ने-जज्ब कर लेने की फिराक में रहा है और मैं उसके खिलाफ अपनी सुरक्षा की लड़ाई लड़ता रहा हूँ। मैंने कोशिश की थी कि अपने गँवार पैरों के नीचे सात नम्बर के जूतों के बराबर कोई ऐसा टुकड़ा बना सकूँ जो दलदल न हो, जो मुझे आश्वस्त कर सके, जिसकी नीयत खराब न हो।"*[5] यह स्थिति सिर्फ लेखक की न होकर उन तमाम लोगों की है, जो रोजी-रोटी की तलाश में पलायन कर शहर की ओर कूच कर गए हैं।

दूसरी तरफ 'कविता की नई तारीख' कहानी में 'सोना' का चरित्र मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन और उसकी उदात्तता का द्योतक है, जहां सोना अपने पति के साथ हर हाल में खुश रहती है और अपनी बहन के घर जाने के पश्चात् अपनी बहन और उसके पति की उलाहना को बर्दाश्त करती हुई वह अपने पति का साथ देती है और अपने घर ले चलने को कहती है। 'कविता की नई तारीख' का नायक यदि उच्चवर्गीय ठाठ और उसकी मार से स्वयं

को बचाने में सफल हो जाता है, तो इसमें उसकी पत्नी 'सोना' की ही सबसे बड़ी भूमिका है। इस संदर्भ में प्रो. नामवर सिंह लिखते हैं-*"यही वह स्त्री है, जो मेहमान-नवाजी को लात मारकर अपनी टूटी-फूटी गृहस्थी में वापस लौटने के लिए पति को मजबूर कर देती है। गरज यह कि फैसला लेने में पहल करती है-ऐसा फैसला जिससे स्वयं पति डांवांडोल है। यह स्त्री उस दौर की है जब हिन्दी में न तो नारी-मुक्ति आंदोलन की हवा चली थी और न 'स्त्री विमर्श' बौद्धिकों का शगल था। इस दृष्टि से 'कविता की नई तारीख' की पत्नी सोना आठवें दशक की एक नई स्त्री है।"*[6] सोना जैसी स्त्री की बदौलत ही एक सुंदर और खुशहाल गृहस्थ जीवन की नींव रखी जा सकती है, जिसमें न लोभ का स्थान है और न ही ईर्ष्या का। यदि सोना चाहती तो अपने पति को उसकी जड़ से हिला सकती थी और उनका गृहस्थ जीवन डांवांडोल हो सकता था; लेकिन सोना अपनी समझदारी का परिचय देती हुई अपने पति के साथ खड़ी नजर आती है। अपने पति की इज्जत में ही अपनी इज्जत देखती है और उसे घर चलने के लिए मजबूर कर देती है, जहाँ उसकी अपनी दुनिया है, छल-छद्म से बिल्कुल ही परे।

5.2.1. धार्मिक स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

बनारस काशी विश्वनाथ की नगरी है, तो जाहिर-सी बात है कि काशीनाथ सिंह के किन्हीं पात्रों में धर्म के प्रति आस्था और कट्टरता भी दिखाई देगी ही। परंतु कुछ ऐसे भी किरदार उनके यहाँ हमें मिलते हैं, जो

धर्मांधता के विपक्ष में खड़े हैं। उनका लोकेल काशी का है, परंतु उनकी काशी नगरी में पूरे विश्व की झलक देखी जा सकती है। यहाँ देश-विदेश से आये विभिन्न प्रकार के लोगों को देखा जा सकता है, जो कमोबेश धार्मिक प्रवृत्ति के होते हैं। परंतु यह कहना-समझना भूल होगी कि इसके अलावा बाकी तरह के लोग वहाँ नहीं रहते। वहाँ के समाज में मजदूर वर्ग, किसान वर्ग सभी हैं और काशीनाथ सिंह ने एक-एक कर सभी पर अपनी पैनी दृष्टि दौड़ाई है। बनारस की जमीन पर पैर रखने के साथ ही मंत्रोच्चार और शंखनाद के साथ 'गंगा आरती' कानों में गूँजने लगती है और उसे सुननेवाला सम्मोहित होकर उसी में रम जाता है। जब बात चलती है काशीनाथ सिंह के कथा साहित्य में आये धार्मिक पात्रों की, तो इस संदर्भ में सबसे बड़ा नाम आता है 'काशी का अस्सी' उपन्यास में वर्णित धर्मनाथ शास्त्री का, जो अस्सी मोहल्ले के पंडितों के मुखिया हैं और धर्म और कर्तव्यनिष्ठा उनकी धमनियों में दौड़ती है।

धर्म के बाजार में आत्मसंघर्ष बार-बार हारता है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। आज धर्म बाजार-निर्माण एवं विक्रय-विस्तार का एक जरिया बन गया है । उक्त रचना में धर्मनाथ शास्त्री के स्वप्न में आकर शिवजी का यह कहना -*"चूतिए, मैंने बहुत बर्दाश्त किया रे! जहाँ मुझे रखा है वह मंदिर है कि माचिस? हिमालय की ऊँचाइयों का पखेरू मैं, समुद्र की गहराइयों का थहैया मैं, अंतरिक्ष के सन्नाटे का ता-ता थैया मैं। तेरी मजाल कैसे हुई मुझे डिब्बा-डिब्बी में बंद करने की? अब तक मैं धतूरे और भाँग के नशे में धुत्त*

था। मेरा दम घुट रहा है, उस कालकोठरी में। अगर अपनी खैर चाहता है तो अभी, इसी क्षण मुझे वहाँ से –उस झोंपड़ी से निकाल और ले चल खुले में – खुले आसमान में जहाँ चाँद हैं, तारे हैं, नक्षत्र-मंडल है, सूर्य है, हवा है, धूप है, बारिश है! उठ और ले चल!"[7]

धर्मनाथ शास्त्री का यह स्वप्न यों ही नहीं है, बल्कि यह उनकी कमाई से जुड़ा हुआ है। यह बाजार का प्रभाव ही है कि अब शास्त्री जी भी 'पेइंग गेस्ट' रखने का मन बना चुके हैं और जहाँ शिव जी का निवास-स्थान हैं, वहाँ शास्त्री जी की 'पेइंग गेस्ट' मादलेन के लिए वे पश्चिमी शैली का 'टॉयलेट' बनवा रहें हैं, जिससे उनकी भी गाढ़ी कमाई हो सके। यह बाजार का प्रभाव नहीं है तो और क्या है, जो धर्मनाथ शास्त्री जैसे कट्टर ब्राह्मण को भी अपनी जड़ से हिला सकता है। ऐसे में आम व्यक्ति की क्या बिसात है? कहना न होगा कि पूंजी के आगे नतमस्तक आस्था या आस्था का छद्म काशीनाथ सिंह के यहाँ बेनक़ाब हो जाता है। काशीनाथ सिंह के कथा-साहित्य में हिंदू समाज के चारों वर्णों (फिर चाहे वे ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य हों या शूद्र) के किरदार मौजूद हैं। उनका कथा-साहित्य इस संदर्भ में हमारे समाज के वस्तुगत रूप का लघु संस्करण है।

5.2.2. शैक्षिक स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

जैसे-जैसे समय बदला है, वैसे-वैसे सामाजिक परिदृश्य भी बदला है और समाज में रहने वाले लोगों में जागरूकता भी आयी है। शिक्षा का महत्व

भी अब लोग समझते हैं, तो जाहिर-सी बात है कि समाज और साहित्य में सकारात्मक बदलाव आएगा ही। काशीनाथ सिंह की कृतियों के पात्र भी पढ़े-लिखे शिक्षित समाज से ताल्लुकात रखते हैं। वे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में बदलाव लाना चाहते हैं। 'सिद्दीकी की सनक' शीर्षक कहानी में ऐसे ही एक पात्र की कथा है, जो समाज में बदलाव का पक्षधर है- *"सिद्दीकी साहब न दार्शनिक हैं, न लेखक हैं, न पत्रकार हैं, न जासूस, लेकिन पिछले कुछ सालों से उनपर एक खब्त सवार थी। वे अखबारों में छपनेवाली रोज-रोज की वारदातें और वाकये पढ़ते थे और उनमें से उस घटना को चुन लेते थे, जो उनकी समझ से आसान भी थी और पहुँच के दायरे में भी। फिर वे जानने की कोशिश करते थे कि हकीकत क्या है?"*[8] व्यवस्था सिद्दीकी साहब जैसे लोगों को 'सनकी' का ही तमगा देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि आधुनिक समाज में जहां लोगों के पास स्वयं के लिए भी समय नहीं, वे समाज के बारे में अगर सोचें तो उनको सनकी नहीं तो और क्या कहा जाएगा? सिद्दीकी साहब ऐसे ही एक शख्स हैं, जो समाज में घट रही घटनाओं की खोज-खबर लेते रहते हैं। आज के समय में समाज की चिंता किसी को नहीं रह गई है। सब अपने आप में व्यस्त हैं। ऐसे में काशीनाथ सिंह ने सिद्दीकी साहब जैसे पात्र के माध्यम से समाज की विसंगतियों की पड़ताल करने की ठानी है और साथ ही इस सबके प्रति अपनी चिंता भी व्यक्त की है।

काशीनाथ सिंह ने ऐसे पात्रों को गढ़ा है, जो समाज की गहराई तक पहुँच कर ऐसे सच का पता लगाना चाहते हैं, जिसकी वजह से सामाजिक

व्यवस्था में उथल-पुथल मची हुई है। 'सिद्दीकी साहब' सच की तलाश में निकल पड़े हैं, इस बात की फिक्र किए बगैर कि समाज उन्हें 'सनकी' मान चुका है। इसके बावजूद सिद्दीकी साहब के आँकड़े दिमाग पर असर डालने के लिए पर्याप्त हैं-*"सिद्दीकी के आँकड़े बताते हैं कि मामले आगजनी के हों या बलात्कार के, राहजनी के हों या लूटपाट के, ठगी के हों या हत्या के, उन्हें गौर से देखो तो पाओगे कि गरीब से टकरा रहा है, खाता-पीता खाते-पीतों से टकरा रहा है, जाति से टकरा रही है, धर्म मजहब से टकरा रहा है, लेकिन एक भी दौलतमंद दूसरे दौलतमंद से नहीं टकरा रहा है।"*[9] यदि सिद्दीकी साहब के आंकड़ों की पड़ताल की जाए तो यह बात सौ फीसदी सही साबित होती है। एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो चुका है, जिसमें लोग आपस में टकरा रहे हैं और सबसे ज्यादा आम लोग आपस में टकरा रहे हैं और दौलतमंद लोग इसका भरपूर मजा उठा रहें हैं।

काशीनाथ सिंह के पुरुष पात्रों में समाज की चिंता व्याप्त नजर आती है। लोग अब उन्हें पागल घोषित कर चुके हैं अर्थात् लेखक का इशारा साफ है कि आज के समय में अपना सब काम छोड़कर समाज की चिंता करनेवाले, सच का पक्ष लेनेवाले को लोग कोई महत्व नहीं देते हैं। इसके बाद भी वह युवा-सच को जानने के लिए इश्तहार बनाता है, जिसमें लिखा था-*"सच उसके और नीचे था-मेरे लाल! तुम कहाँ हो? किससे नाराज हो? अब तो आ जाओ। कोई कुछ नहीं कहेगा!"*[10] परन्तु उस सच की खोज करते-करते

सिद्दीकी आज खुद लापता हैं। कहना न होगा कि हमारे समाज में सच कहने-जानने वालों को या तो पागल कहा जाता है या उन्हें सदा के लिए संसार से लुप्त कर दिया जाता है।

इसके बाद काशीनाथ सिंह के शिक्षित पात्रों में 'जादू' और 'ज्वान' जैसे पात्र आते हैं। वे समाज में व्याप्त विषमताओं पर चिंता व्यक्त करते हुए समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को लेकर गंभीर हैं। वास्तविकता यह है कि हमारे समाज का पढ़ा-लिखा तबका अपनी किंकर्तव्यविमूढ़ता से ग्रस्त है। यह वर्ग चाह कर भी कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं है। ऐसे में महाप्राण 'निराला' की कालजयी कृति 'कुकुरमुत्ता' की स्मृति हो आना स्वाभाविक ही है, जिसमें कुकुरमुत्ता सिर्फ बड़बोलापन दिखाता है और एक शिक्षित 'लुंपेन' चरित्र की तरह से मात्र से बड़बड़ाता रहता है, जबकि कर्म और दायित्व के मामले में उसके यहाँ एक बड़ा-सा शून्य है।

5.2.3. राजनीतिक विचारधारा के स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

हमारे देश की आजादी के बाद राजनीति का स्वरूप भी बदला है और सन् 60 के बाद तो कुछ ज्यादा ही बदलाव दिखाई पड़ते हैं। सन् 62 में जहाँ भारत-चीन युद्ध का बिगुल बजता है, वहीं सन् 1971 में भारत-पाकिस्तान की लड़ाई के परिणामस्वरूप पूर्वी पाकिस्तान स्वतंत्र राष्ट्र बांग्लादेश के रूप में अस्तित्व में आता है। तत्पश्चात्, 1972-73 के आपातकाल का दौर प्रारंभ होता है और फिर 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या उन्हीं के अंगरक्षकों के

द्वारा कर दी जाती है। घटनाएं इतनी तेज़ी से घटती हैं कि बदलती हुई स्थितियों को समझने में रचनाकार को बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जिस स्वतंत्र भारत का सपना हम भारतवासी देख रहे थे, अब वह ध्वस्त हो रहा था। यह वही समय था जब पंचवर्षीय योजनाएं असफल हो रही थी, आर्थिक अवस्था चरमरा रही थी, बेरोजगारी की समस्या अपना दायरा सुरसा की तरह विकराल बनाती जा रही थी और लोग रोजगार की तलाश में शहरों की तरफ पलायन कर रहे थे। सत्ता से आम जनता का विश्वास उठ-सा गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य में भी बदलाव आया और यह लाजिमी भी था क्योंकि इसके पहले साहित्य में एक ठहराव-सा आ गया था। ऐसे में जब इस दौर के रचनाकार अपनी कलम उठाते हैं तो उनका स्वर राजनीति के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं की जाँच करता है। फलतः वे अपने पात्रों के मुँह से वह बात कहलवाते हैं, जो हमारे समय की माँग है।

सुधीर (सुधीर घोषाल), जादू (लाल किले के बाज), ज्वान (अधूरा आदमी) आदि जैसे पात्रों की विचारधारा राजनीति से ओत-प्रोत हैं। 'सुधीर घोषाल' शीर्षक कहानी काशीनाथ सिंह की सर्वाधिक चर्चित कहानियों में से एक है । यह नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित कहानी है। कहानी का पात्र सुधीर, जो एक कोयला मजदूर है, कभी सिंगरेनी (दक्षिण) नहीं गया। लेकिन वहाँ के मजदूरों पर हुए अत्याचार का बदला लेने के लिए वह 'वेस्ट इंडिया कोल कंपनी एंड लिमिटेड' की बिहार शाखा के प्रशासक के यहाँ

नौकर का काम करते हुए मौके की तलाश करता है। सुधीर घोषाल की बात जब लेखक से होती है तब वह कहता है- *"जानता है तुम कि ई शाला क्या चीज हाय? इहाँ से पहले ये सिंगरेनी में था-कहीं दक्खिन में। सो ई दस लेबरों को जिंदा आग में भून दिया। और भी बहोत-बहोत अत्याचार किया। दो बरस पहले हम अखबार में सुना था। हमारा साथी लोग बोला था। हम उनलोगों को जानता भी नेईं। सिंगरेनी गिया भी नेईं। वह लोग भी हमारे को नेईं जानता! बाकी हम भाई-बन्द हाय, लेबर हाय! जब ई साहब बनकर इस जगह में आया तो हमको पता चल गिया। हम जिंदा नेई छोड़ेगा इसको।"*[11] 'सुधीर घोषाल' कहानी में मजदूर-क्रांति की छाप साफ-साफ देखी जा सकती है। इस कहानी में नक्सलवाद का असर साफ-साफ दिखाई पड़ता है । परमानंद श्रीवास्तव इस कहानी पर विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं-*"सुधीर घोषाल' कहानी काशीनाथ सिंह के उस रचनात्मक संघर्ष से परिचित कराती है, जो विचारधारा को कार्यक्रम में बदलने के संघर्ष से सहयोग करने के लिए प्रतिबद्ध है।"*[12] सुधीर घोषाल एक प्रशासक को खत्म कर, व्यवस्था को दुरुस्त करना चाहते हैं, मजदूरों की परेशानी खत्म करना चाहते हैं पर वे इतना भी सोच नहीं पाते कि किसी एक प्रशासक को खत्म कर देने भर से व्यवस्था दुरुस्त नहीं हो जाएगी। इस व्यवस्था में शोषकों के तार दूर-दूर तक फैले और जुड़े हुए है।

5.2.4. आर्थिक स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

किसी भी स्वस्थ समाज की कल्पना तभी की जा सकती है जब शिक्षा का ढाँचा मजबूत हो और इसके लिए आर्थिक रूप से समाज का मजबूत होना बहुत जरूरी हो जाता है। वैसे समाज में विभिन्न जाति-धर्म के लोग निवास करते हैं। इसके साथ ही उनके रहन सहन और बातचीत में भी फर्क पाया जाता है। इनमें कोई आर्थिक रूप से मजबूत होता है तो कोई आर्थिक रूप से कमजोर। ऐसे समाज को निम्नत: तीन भागों में बाँटा जाता है:

1. उच्च वर्ग
2. मध्य वर्ग और
3. निम्न वर्ग।

इनमें सबसे डांवांडोल स्थिति मध्यवर्ग की होती है।

काशीनाथ सिंह की कहानियों में खासकर मध्यवर्गीय चेतना पर आलोकपात किया गया है। जो दो भागों में बँटा हुआ होता है- क) उच्च मध्यवर्ग (ख) निम्न मध्यवर्ग।

काशीनाथ सिंह की *'कविता की नई तारीख', 'संतरा', 'मौज मस्ती के दिन'* जैसी कहानियों के पात्र जहाँ मध्यवर्ग, निम्न वर्ग का नेतृत्व करते नजर आते हैं, वहीं *'सदी का सबसे बड़ा आदमी'* शीर्षक कहानी में 'शौक' साहब जैसे लोग आज भी सामंती वर्ग अर्थात् उच्च-वर्ग का प्रतिनिधित्व करते नजर आते हैं।

5.2.5. सामाजिक स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

वर्ण सामाजिक संरचना में सक्रिय इकाई नहीं है बल्कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में इसे संदर्भ के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह वर्गीकरण का कार्य करते हुए विभिन्न जातियों की प्राप्त स्थितियों के बारे में मोटी-मोटी जानकारी मुहैया कराता है। हमारे समाज में वर्ण को प्रायः चार वर्गों में विभाजित करके देखा जाता है: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसमें प्रथम तीन को द्विज (जिनका जन्म दो बार हो) माना जाता है क्योंकि जीवविज्ञान की दृष्टि से भौतिक जन्म लेने का बाद दूसरे जन्म का कोई प्रश्न ही नहीं बनता परंतु धार्मिक कर्मकांडों के अनुसार उपनयन संस्कार के साथ द्विजों का दूसरा जन्म होता है। चौथा वर्ग शूद्रों का है, जिसके अन्तर्गत येण-केण-प्रकारेण अपनी आजीविका चलाने वाली जातियाँ सम्मिलित मानी जाती हैं। इन्हें साफ-सुथरे व्यवसायों में रत माना जाता है। वर्णों का भेद यहीं समाप्त नहीं हो जाता। इसके बाद भी एक स्तर है, जो पाँचवें स्तर पर है, जिसकी गिनती पारंपरिक ढाँचे के अन्तर्गत नहीं होती है। इस स्तर में सम्मिलित लोग अपवित्र और अस्वच्छ कहे जानेवाले पेशे से जुड़े हुए होते हैं, ऐसा माना जाता है। इस स्तर की जातियों को प्रायः अछूत और अस्पृश्य कहा जाता है। इन्हें 'अन्त्यज' अर्थात् वर्ण व्यवस्था से बाहर का माना गया है। कानूनी स्तर पर इस स्तर का उन्मूलन हो चुका है, लेकिन आज भी देश के लगभग सभी कोने में यह स्तर देखा जा सकता है। गाँधीजी ने इस

'अन्त्यज' कही गई जाति को ही 'हरिजन' नाम से संबोधित किया है और जो स्वयं को आज दलित भी कहती है।

काशीनाथ सिंह की कहानियों में समाज के इन वर्णों का चित्रण देखा जा सकता है। इस संदर्भ में *'कहानी सरायमोहन की'*, *'चोट'* और *'वे तीन घर'* आदि कहानियों का जिक्र किया जा सकता है। जहाँ *'कहानी सरायमोहन की'* में ठाकुर और ब्राह्मण की चतुराई का जिक्र किया गया है। अपने आप को उच्चवर्ग का मानने वाले सवर्ण और उच्चवर्ण की नुमाइंदगी करने वाले ठाकुर और ब्राह्मण किस तरह अपनी पेट की आग बुझाने के लिए दलित वर्ग से संबंध रखनेवाले मोहन के द्वारा बनाई गई बाटियाँ चट कर जाते हैं, इस पर लेखक का व्यंग्य देखने ही बनता है। मोहन सब जानते हुए अपनी बाटियाँ ठाकुर और ब्राह्मण को खिला देता है। एक जमाना था जब गाँवों में ठुकराई चलती थी और ब्राह्मणों की भी समाज में अच्छी पैठ थी, परन्तु समय के बदलाव ने वह सब खत्म कर दिया। फिर भी उनके अंदर वह मानसिकता बनी हुई है जबकि ठाकुर साहब अपनी बहू के ताने सुन-सुन कर घर से भागने को मजबूर हैं, वहीं पंडित जी भी अपनों के सताए हुए हैं। इसके बावजूद इन दोनों के अंदर अपने से छोटी कही गई जाति को लूटने और मूर्ख बनाने की कला जस की तस है। मोहन को कुछ सुनाने के लिए कहने पर मोहन अपनी पहेली और गाने के माध्यम से इन दोनों पर तीखी चोट करता है और पहेली बुझाता है-

"चूँटी क मार चूँटा
गाँड़ गुह करिया
ठूँठ पकड़िया
लुंस भैंसा
बानर पदना
राजा टेड़ुकाह
रानी कुबराह
सभगा उतान।"[13]

इसके बाद 'दे दना दन' गाने के माध्यम से मोहन राम अपना विरोधी स्वर प्रकट करता है।

अगली कहानी 'चोट' में ठाकुर संचा सिंह और निम्न जाति के निकाम (गड़ेरिए) का चित्रण मिलता है। गाँव से बाहर आ कर दोनों अपनी-अपनी रोजी-रोटी के जुगाड़ में लगे हैं, जहाँ संचा सिंह एक रेस्टोरेंट में 'बेयरा' का काम करते हैं, वहीं निकाम एक कार्यालय में 'पियान' के पद पर कार्यरत है। गाँव के ठाकुर कहे जाने वाले संचा सिंह को 'चोट' तब लगती है जब उनसे नीची जाति का निकाम उनके रेस्टोरेंट में आ कर उन्हें 'आर्डर' देता है, जिसे संचा सिंह लेने से साफ इन्कार कर देते हैं। अंत में दोनों की हाथा-पाई भी होती है। रेस्टोरेंट का मालिक संचा सिंह पर क्रोधित होता है और निकाम से माफी माँगने को कहता है लेकिन माफी माँगने के बजाय संचा सिंह मालिक को एक घूँसा लगाने के बाद दुकान के बाहर निकल जाते हैं। लेखक ने कहानी में संचा सिंह और निकाम के माध्यम से वर्गगत तथा वर्णगत सच्चाइयों से पाठक वर्ग को अवगत करवाया है और इस बात की ओर संकेत भी किया है

कि उक्त दोनों वर्ग के लोग अपनी मानसिकता को साथ में अब भी लिए हुए चलते हैं और एक दूसरे के प्रति मौके की तलाश में रहते हैं, जिससे वे एक-दूसरे को नीचा दिखा सकें। ऐसा लगता है कि कथाकार प्रेमचंद ने जिस *'मुक्तिमार्ग'* को सुझाने की चेष्टा की थी, वह काशीनाथ सिंह के यहाँ *'चोट'*-ग्रस्त हो गया।

इस कड़ी में अगली कहानी *'वे तीन घर'* का शीर्षक स्मृत हो आता है, जिसमें दलितों (चमार) की नुमाइंदगी करते हुए 'विपत' और अपनी जड़ से अलग होते हुए ब्राह्मण 'मदन' की मित्रता और उनकी आपबीती की कथा है। शहर में रहते हुए 'विपत' जब कई सालों बाद अपने मित्र 'मदन' से मिलते हैं तो कहते हैं-*"बड़े बुरे दिन बिताए हैं हमने यार! जितनी जलालत झेली है हमने, उसकी कल्पना नहीं कर सकते तुम। अपने या मेरे गाँव में अपना दरवाजा छोड़कर कभी मुझे कहीं बैठते हुए देखा है तुमने? बामन के घर जाओ या ठाकुर के, खड़े रहो। बैठना है तो मचिया या मोढ़ा कहीं से उपराओ और बैठ जाओ। कुआँ हम खोदें लेकिन हमें पानी पीना हो तो चुल्लू बनाओ तब पीयो। गुड़ भी देंगे तो ऊपर से गिराएँगे या फेंकेंगे, लोक लो। अगर तुम हमारे घर पैदा होते तो पता चलता कि चमार होना क्या होता है?"*[14]

'विपत' नाम का यह पात्र दलित समाज का नेतृत्व करता हुआ पूरी ईमानदारी से अपनी दास्तान का बयान करता है। विपत नाम के पात्र के बहाने कहानीकार ने दलित समाज की करुण कथा का चित्रण किया है, जहां ग्रहण के वक्त लोगों से बासी रोटी का दान माँगने वाले चमार, अब अपनी

दशा सुधार, समाज की मुख्य धारा में जुड़ने के लिए तत्पर नजर आते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि इस व्यवस्था से पार पाना किसी के बस की बात नहीं। कहना न होगा कि कथाकार काशीनाथ सिंह ने हमारे समाज के वर्णगत पूर्वाग्रहों तथा अंतर्विरोधों को बेपर्द किया है।

5.2.6. भाषायी स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

काशीनाथ सिंह प्रतिभा के धनी व्यक्ति है। काशीनाथ सिंह अपने ढंग के अकेले रचनाकार हैं और एक अरसे से लिख रहें हैं। उनके साहित्य की विषय-वस्तु और उनकी भाषा उन्हें अपने समकालीन रचनाकारों से अलग पहचान देती है। काशीनाथ सिंह की भाषा के संदर्भ में सुभाष राय लिखते हैं- *"एक बार फिर काशीनाथ ने भाषा के सिर पर ईंट दे मारी है। बड़े-बड़ों में बेचैनी है, खिसियाहट है, गुस्सा है।...साहित्य के धुरंधर शुद्धतावादी लठैतों को गंभीर चुनौती दी है उन्होंने।"*[15]

काशीनाथ सिंह की भाषा उनकी रचनात्मक उत्कृष्टता और लोकप्रियता का आधार भी है। उनकी कहन, बतकही, आख्यानपरक शैली के साथ बनारसी लहजे वाली ठेठ भाषा, साहित्य-प्रेमियों में मुख्य आकर्षण का केन्द्र रहा है। काशीनाथ सिंह एक पास एक तल्ख और टटकी भाषा है, जिसमें गाँव की उस भाषा की भी खुशबू मिलती है, जिसे जनभाषा या लोकभाषा कहते हैं। काशीनाथ सिंह की रचनाओं में पात्रों द्वारा ऐसी भाषा का प्रयोग खूब हुआ है। काशीनाथ सिंह ऐसी भाषा में गंदगी देखने वालों को आगाह

करते हुए तथा अस्सी और भाषा का संबंध बताते हुए 'काशी का अस्सी' की पहली कड़ी 'देख तमाशा लकड़ी का' में लिखते हैं- *"मित्रों, यह संस्मरण वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं; और उनके लिए भी नहीं जो यह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है! जो भाषा में गंदगी, गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद् 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएँ।"*[16]

जब तक भाषा सहज, सरल और जनभाषा के करीब नहीं होगी, उसका पाठक वर्ग में लोकप्रिय होना कठिन होगा। काशीनाथ सिंह ने अपने पात्रों के मुख से ऐसी ही भाषा को निकलवाया है, जो सीधे पाठक के हृदय से जुड़ जाती है।

5.2.7. परिवेशगत स्तर पर पात्रों का वर्गीकरण:

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके परिवेश का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। हम जिस परिवेश में पलते बढ़ते हैं, हम पर उस परिवेश का असर पड़ना साधारण-सी बात है। व्यक्ति जब शिशु के रूप में जन्म लेता है तब वह कच्ची मिट्टी के घड़े के समान होता है। उसे जैसा रूप दिया जाए वह वैसा ही रूप ग्रहण कर लेता है अर्थात् परिवेश जिस तरह का होगा, वह शिशु उस परिवेश के तत्वों को ग्रहण करता जाएगा। एक गाँव में पले-बढ़े बच्चे और एक शहर में पले बढ़े बच्चे के व्यवहार में अंतर आना जरूरी

हो जाता है। काशीनाथ सिंह की कहानियों में गाँव, कस्बे और शहर तीनों में रहनेवाले पात्र देखने को मिलते हैं, जो अपनी तमाम खूबियों के साथ उनके यहाँ उपस्थित है। जो व्यक्ति जिस परिवेश में रहता है, धीरे-धीरे वह उसी परिवेश में ढल जाता है।

काशीनाथ सिंह के पात्र अपने परिवेश में इस तरह ढले हुए हैं कि कहीं से भी उन्हें उनके परिवेश से काट कर नहीं देखा जा सकता, फिर चाहे वे गाँव के हों, कस्बे के हों या फिर शहर के।

'अपना रास्ता लो बाबा' शीर्षक कहानी में बेंचू बाबा अपने संबंधी 'देऊ' को ढूँढते हुए गाँव से शहर आते हैं। लेकिन गाँव का देऊ शहर में अब देवनाथ बन चुका है। बेंचू बाबा 'देवनाथ' में अपने 'देऊ' को ढूँढते नजर आते हैं। बेंचू बाबा के शब्दों में *"बचवा ! देऊ ! तूँ ही है न। सपना हो गया है तूँ। अरे, अपना गाँव-घर है। बाबा-दादा की निशानी है। कोई दूर भी नहीं गया है। कभी-कभी तो आया कर। काम वही देगा। घूम-फिर कर वहीं आएगा, बताए देते हैं।"*[17] उक्त कहानी में काशीनाथ सिंह यह दिखाना चाहते हैं कि शहर आकर देवनाथ पूरी तरह से शहरातू हो चुका है और अपना वर्ग बदलते ही अब वह गाँव और अपने अतीत को पहचानना नहीं चाहता। यह अपनी जड़ों से कटना आदमी को कहाँ ले जाएगा, यह सहज ही अनुमेय है। यह अलगाव मौकापरस्ती का जबर्दस्त उदाहरण हमारे सामने रखता है।

आज हमारे देश में साझी संस्कृति पर खतरा मंडला रहा है। यह सांस्कृतिक साझापन हमारे देश की शक्ति है। परंतु आज जो लोग लोगों के झगड़े-फसाद के बीच 'हस्तक्षेप' करते हैं, वे सभी की आँखों का कांटा बन जाते हैं। 'हस्तक्षेप' शीर्षक कहानी में कथाकार काशीनाथ सिंह रसूल मियाँ के माध्यम से यही दिखलाने की चेष्टा करते नजर आते हैं- *"रसूल घासी टोले का सिरदर्द है। इसके चलते टोले में मार-पीट, झगड़ा-फसाद सब कुछ मुहाल हो रहा है। पहले की बात और थी लड़ो, झगड़ो, मारकर हाथ-पैर तोड़ दो, सिर फोड़ लो, रात-दिन बमचख मचाए रहो, मजा ही मजा था। न कोई देखने वाला, न कोई सुननेवाला। लेकिन अब तो पत्ता भी खड़का कि कमबख्त हाजिर। पूछो कि जब तुम हमें कपड़े-लत्ते नहीं दे सकते, खाना नहीं दे सकते, दवा-दारू नहीं दे सकते, तो तुम्हें यह कहने का क्या हक़ है कि ऐसे नहीं ऐसे रहो। हम जैसे रहते आए हैं, रह रहे हैं, इसमें तुम्हारे बाप का क्या जाता है?"*[18]

हमारा समाज ग्राम, क़स्बे और नगर में रहनवारी के लिहाज से बँटा हुआ है। लोग इन्हीं क्षेत्रों से निकल-निकल कर आते हैं, फिर चाहे मामला जीवन का हो या कथा-साहित्य का। काशीनाथ सिंह के कथाकार के साथ अपवाद की स्थिति नहीं है। उनके यहाँ भी पात्र इन्हीं इलाकों से रचना में प्रविष्ट होते हैं। इस लिहाज से पात्रों का वर्गीकरण गलत नहीं होगा।

5.2.7.1. ग्रामीण-पात्र:

काशीनाथ सिंह का संबंध गाँव से अधिक रहा है और गाँव में पढ़ाई के साथ उन्होंने वहाँ की संस्कृति और सभ्यता को भी करीब से देखा, जाना और जिया है। गाँव के सभी बुजुर्ग काका हैं तो बुजुर्ग महिलाएँ काकी, सभी युवक भाई हैं तो सभी दुल्हनें बहू और भौजाई। किसी के मन में कोई छल-कपट का नाम-ओ-निशान नहीं। किसी के घर में किसी के साथ भी किसी की थाली में खाने बैठ जाओ। किसी बात पर झगड़ें भी हों तो दूसरे दिन हंसी-ठिठोली में सब शामिल हो जाते हैं और इससे भी नहीं हुआ तो पर्व-त्योहार है ना, शादी ब्याह भी तो है। *'मुसइ चा' शीर्षक कहानी में कथाकार काशीनाथ सिंह अपने ग्रामीण पात्रों की बनावट-बुनावट पर कुछ इस तरह अपनी बात रखते हैं- "यह दस साल पहले की बात है कि जब गठा हुआ छरहरा शरीर तुड़े-मुड़े कान, भौंहों के नीचे गड्ढों में चमकती हुई गोलियाँ, ठोड़ी पर खड़े बेतरतीब बाल लिए एक युवक गाँव में दाखिल हुआ तो उसके चेहरे पर न चिंता थी, न अफसोस, न गुस्सा-एक अजीब किस्म की डरावनी शांति थी। शहर से लौटने के बाद किसी ने उसे हँसते हुए नहीं देखा था। उसके पास इतनी जमीन भी न थी कि वह खेतों पर गुजारा करता।"*[19]

'कहानी सरायमोहन की' संज्ञक कहानी में आलोच्य कथाकार ग्राम्य-जीवन में बची हुई सामंती चेतना का चित्र खींचते हुए कहते हैं-*"बाबू साहब में बाप-दादों का खून बह रहा था। वे कभी नहीं भूल पाते थे कि उनकी मूंछें*

कितनी घनी और लंबी थीं। हाथी कैसा था, उसके दांत कितने बड़े थे, घोड़े किस-किस रंग के आते थे, उनकी चांदी की मूठवाली छड़ी कहाँ से मंगवाई गई थी, 'खिचड़ी पर कितने बाँभनों और भिखमंगों को दान दिया जाता था, होली के दिन धतूरे और गुलाब-जल मिली भंग में किस तरह पूरी चमटोल पीकर अघा जाती थी, जब घोड़े पर निकलते थे तो किस तरह परजा हाथ बाँधे जहाँ की तहाँ खड़ी हो जाती थी ? उन्हें यह सारा कुछ याद रहा, अगर नहीं याद रहा तो केवल यह कि जमींदारी खत्म होने के बाद बची-खुची जायदाद कैसे बचाई जाए ?"[20]

'एक लुप्त होती हुई नस्ल' संज्ञक कहानी में कथाकार काशीनाथ सिंह दादू और पुराने के माध्यम से विवाह कराने वाले 'अगुआ' की भूमिका और समाज और परिवार में बूढ़ों के बेमानी होने के गँवई संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- *"इलाके का चप्पा-चप्पा देखा-भाला था दोनों बुड्ढों का। लड़कों की पूरी फेहरिश्त रहती थी इनके दिमाग में। किसके घर कितने लड़के हैं ? कितने तैयार हो चुके हैं और कितनों में साल-दो साल की देर है ? कितनों का कहाँ-कहाँ तय हो चुका है ? लेकिन हमें क्या मालूम ? घर बैठे कोई सपना तो देख नहीं रहे हैं कि तय हो चुका है? कौन गरजू है और कौन पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता।"*[21]

5.2.7.2. क़स्बाई पात्र:

गाँव और शहर के बीच की कड़ी 'क़स्बा' कहलाता है। काशीनाथ सिंह की रचनाओं में ऐसे पात्रों का बोलबाला है। ऐसे पात्र पूरी तरह से न गाँव के बने रह पाते हैं न ही शहर के। आधी-अधूरी सुविधाओं और अपनी-अपनी जरूरतों को पूरा करने में जद्दोजहद करते हुए अपनी जिंदगी काटने के लिए मजबूर होते हैं। कथाकार काशीनाथ सिंह की *'क़स्बा, जंगल और साहब की पत्नी'* शीर्षक कहानी में क़स्बाई जीवन के चित्र और क़स्बाई पात्रों के दर्शन होते हैं। इन पात्रों के पास जिंदगी जीने के लिए तमाम भौतिक संसाधन होने के बावजूद उनकी जिंदगी में अपनी तरह का एक अभाव दिखाई पड़ता है। क़स्बाई जीवन का ठहराव और सीमाएँ उक्त कहानी में स्पष्टतः लक्षित की जा सकती हैं। यथा, "इसी बीच क़स्बे से तीन व्यक्ति आए और उन्होंने मिसेज़ गोठी को अभिवादन किया। उन व्यक्तियों ने अपना परिचय देने के बाद बताया कि क़स्बे के लोग गोठी परिवार की प्रशंसा करते हैं और उनके बारे में सब कुछ जानते हैं। इन दिनों क़स्बे में गोठी परिवार के बारे में कई तरह की अफवाहें थीं। कुछ दिनों तक चर्चा रही कि पिछले जंगल महकमे के अफसर सिन्हा की तरह मि. गोठी ने भी 'लव मैरिज' की है और इसका फल भुगत रहे हैं। हफ्ते भर बाद यह अफवाह मिथ्या घोषित कर दी गई। और इसकी जगह एक दूसरी चर्चा चली कि वह औरत गोठी साहब के गले यों ही मढ़ दी गई है और गोठी उससे पीछा छुड़ाने के लिए भागते रहते हैं।"[22]

5.2.7.3. नागर-पात्र:

नगर में रहनेवाले लोगों को नागर-पात्र कहते है। ये वे लोग होते हैं, जो अपने-आप को आधुनिक मानते हैं और अपना रहन-सहन भी समय के हिसाब से बदलते रहते हैं। काशीनाथ सिंह के पात्रों में इनका स्थान ज्यादा है। मानों आधुनिकता की पहली किरण इन पर ही पड़ती है। गाँव और गाँव की संस्कृतियों से जुड़े लोगों को ये हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव इन पर सबसे पहले पड़ता है। नगर की आपा-धापी वाली जिंदगी में अपनी जड़ और जमीन से लगभग कटे हुए ये लोग खुद को नगर के उस जीवन में स्वयं को 'फिट' कर लेते हैं। अपनों के लिए इनके पास न तो समय है और न ही संवेदना। *'अपना रास्ता लो बाबा'* शीर्षक कहानी में जब 'देवनाथ' के गाँव से 'बेंचू बाबा' उनसे मिलने आते हैं तो अपने भतीजे 'देऊ' से मिलने और अपना प्रेम व्यक्त करने के लिए एक 'गगरे' में गन्ने का रस ले आए थे। परन्तु उनका भतीजा अब गाँव वाला 'देऊ' न हो कर शहर का 'देवनाथ' बन चुका था और बेंचू बाबा के प्रेम और स्नेह का उनके पास कोई स्थान न था। इंसान अपनी जड़ से किस तरह कट चुका है, बेंचू बाबा के इस वाक्य से समझा जा सकता है- *"बचवा! देऊ! तू ही है न। सपना हो गया है तू। अरे, अपना गाँव-घर है। बाप-दादा की निशानी है। कोई दूर भी नहीं गया है। कभी-कभी तो आया कर। काम वही देगा। घूम-फिरकर वहीं आएगा, बताए देते हैं।"*[23]

बेंचू बाबा के गवँईपन के चलते उन्हें कई प्रकार की परेशानियाँ उठानी पड़ती है और बाबा अंततः गाँव की तरफ कूच करते हैं। देवनाथ के सामने गाँव और बचपन की यादें बाबा की गोद सभी चीजें ताजा हो आती है। चाहते हुए भी वह बाबा को रोक नहीं पाते और बुदबुदाते हैं-*"सारी जिंदगी और सारी दुनिया और सारा जमाना तुम्हारे सामने खड़ा है और तुम एक बेमतलब के बुड्ढे को लेकर मुँह लटकाए बैठे हो!"*[24]

देवनाथ अपने शहरीपन में इतने डूब चुके हैं कि उन्हें गाँव से कुछ लेना-देना नहीं है। उनके बच्चे गाँव के बारे में बिल्कुल नहीं जानते। देवनाथ शहर के हो चुके हैं लेकिन अपनी जड़ें खोकर उन्होंने यह शहरातूपन हासिल किया है।

5.2.7.4. पात्रों के नामकरण के बरअक्स उनकी वर्गगत सच्चाइयाँ:

समाज के किसी भी वर्ग की पहचान उसके रहन-सहन, बात-व्यवहार तथा नामों के द्वारा होती रही है। हिन्दी कथा साहित्य की बात करें तो उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की रचनाओं में ये चीजें देखने को मिलती हैं; जैसे होरी, धनिया, गोबर, हल्कू आदि। यहाँ यह कहना जरूरी जान पड़ता है कि प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ानेवाले रचनाकार के रूप में काशीनाथ सिंह का नाम आता है और इनकी रचनाओं में भी पात्रों के नाम से उनके वर्ग की पड़ताल की जा सकती है। काशीनाथ सिंह की कहानियों में समाज के हर तबके के लोग (पात्र) आते हैं, जो अपने रहन-सहन, व्यवहार और अपने

ज्ञान से अपने-अपने वर्ग की नुमाइंदगी करते नजर आते हैं। ये पात्र अपने-अपने नामों की तरह ही अपने चरित्र को भी चरितार्थ करते हैं जैसे भोला बाबू, मुसइ चा, ज्वान, मोहन, संचा सिंह, विपत एवं ढुक्कूलाल, सोना, रेशमा। कहीं-न-कहीं इनके नाम से इनके परिवेश और इनके वर्ग का भी पता चलता है। काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यासों और कहानियों में पात्र-संरचना की पारंपरिकता को ध्वस्त करते हुए मानवीय पात्रों के साथ-साथ स्थान विशेष को भी कहीं-कहीं पात्र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। यथा, प्रो. रघुनाथ, महुआ के साथ ही काशी जो *'काशी का अस्सी'*, का 'लोकेल' है, का नायक या प्रतिनायक बनकर आता है। यहाँ काशी (बनारस) विभिन्न पात्रों के साथ भूमंडलीकरण की मार सहता हुआ बाजारवाद के चंगुल में फंसकर अपनी संस्कृति और अपनी बाकी बची धरोहर को बचाने की जद्दोजहद करता हुआ अपनी पूरी गरिमा के साथ मौजूद है। यथा, *"भारतीय भूगोल की एक भयानक भूल ठीक कर लें। अस्सी बनारस का मुहल्ला नहीं है। अस्सी 'अष्टाध्यायी' है और बनारस उसका 'भाष्य'! पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से 'पूंजीवाद' के पगलाए अमरीकी यहाँ आते हैं और चाहते हैं की दुनिया इसकी टीका हो जाय...मगर चाहने से क्या होता है?"* [25] इसके अलावा काशीनाथ सिंह के पहले उपन्यास *'अपना मोर्चा'* में परिसर जीवन को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास में भी काशीनाथ सिंह 'मैं' के माध्यम से अपने पात्रों से हमें परिचित कराते हैं। यथा, "*मुझे ज्वान याद आते हैं। उन्होंने मुझसे एक बार कहा था कि डाक्टर! माना कि तुम भी आदमी हो*

और मैं भी आदमी हूँ। तुम इस समय सात सौ रुपयों के आदमी हो। अगर तुम्हारी डिग्रियों को सात सौ रुपयों से निकालकर तुम्हें बाहर कर दिया जाए तो कौन बीस पड़ेगा? कौन तगड़ा पड़ेगा? तुम तो दो कौड़ी के हो जाओगे और मैं? फिर देखो कि मैं अपने तीस रुपए माहवार से अलग हो क्या कर गुजरता हूँ।"[26]

अपने नव्यतम उपन्यास '*उपसंहार*' में काशीनाथ सिंह ने महाभारत की कथा के बहाने तत्कालीन समय की विडंबनाओं की पोल खोल कर रख दी है। उक्त उपन्यास में परिवेश को कमतर नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रभाव की एकता के लिहाज से वह वहाँ अपनी जबर्दस्त उपस्थिति दर्ज कराता है। मिथकीय पृष्ठभूमि पर रचित होने के कारण इन पात्रों के नाम भी मिथकीय हैं। 'उपसंहार' के पात्रों में एक तरफ कौरव और पांडव नजर आते हैं तो दूसरी तरफ कृष्ण और उनके वंशजों का जिक्र आता है। इनके अलावा सामान्य-से सैनिकों और उनके परिजनों का संसार भी दिखता है। इसमें निम्न वर्गों/वर्णों के जीवन के अंतर्विरोधों से लेखक हमें परिचित कराता है और साथ ही हम अस्तित्व-बोध के अति आग्रह का परिणाम भी इसमें हम देख पाते हैं। युद्ध तो होता रहा है और होता रहेगा। इतिहास सदा से इसकी 'नोटिस' लेता रहा है। परंतु महाभारत के युद्ध जैसा वीभत्स युद्ध कदाचित ही हुआ हो। काशीनाथ सिंह के कथाकार ने अपने उपन्यास *'उपसंहार'* में युद्धोत्तर समाज की व्यथा-कथा पूरी निष्ठा से वर्णित की है, जहाँ परिवेश की भी अपनी एक भूमिका दिखाई पड़ती है-

- *"अट्ठारह दिनों तक चला यह महायुद्ध अंततः खत्म हो गया।*
- *आर्यावर्त का कोई ऐसा राज्य नहीं, नरेश नहीं, जो इस पक्ष या उस पक्ष से न रहा हो।*
- *तीनों लोकों में पाया जानेवाला कोई ऐसा अस्त्र-शस्त्र नहीं था, जिसका उपयोग न हुआ हो। सबसे भयानक और अचूक दिव्यास्त्र देवताओं से मिले हुये थे, ऐसे कि छोड़े जाएँ तो धरती बंजर हो जाए, नदियाँ सूख जाएँ, पहाड़ समतल हो जाएँ और वे सब के सब छोड़े गए थे।*
- *कुरुक्षेत्र का सैकड़ों योजन फैला मैदान लाशों से पट गया था- सड़ी-गली,बजबजाती लाशों से। ये लाशें सिर्फ योद्धाओं की ही नहीं थी, इनमें हाथी भी थे, ऊँट भी थे, घोड़े भी, खच्चर भी। कहीं भी एक धुर जमीन तक साबुत नजर नहीं आती थी।*
- *आग्नेयास्त्रों से पहाड़ और जंगल धू-धू कर जल रहे थे। लपटें आसमान छू रही थीं। जो पेड़ जल कर ठूँठ हो चुके थे, उनकी डालों पर फँसे हुए कबंध और मांस के लोथड़े थे, जिनसे लिसलिसा गाढ़ा द्रव टपकता रहता था।*
- *जगह-जगह रक्तकुंड और खून से भरे हुए लबालब नाले थे, जिनमें लाशें, कटे पैर, हाथ या सिर दिखाई पड़ते थे।*
- *आसमान में इतने विशाल और भयानक गिद्ध चोंच में लाशों को दबाए उड़ते रहते थे कि कोई सोच भी नहीं सकता। चीलों और कौवों से तो*

कुरुक्षेत्र का आसमान ही ढ़ँका समझो। काला पड़ गया था एकदम। सूर्य केवल उदय और अस्त होने के समय ही नजर आता।

- *प्रतिदिन युद्ध समाप्त होने के बाद परिजन-स्वजन आते मशाल लिए हुए और लाशों के मलबे में अपने घायल हुए मृत रिश्ते-नातों को ढूँढ़ते। भेड़ियों, लकड़बग्घों, गीदड़ों और कुत्तों के जबड़ों के बीच से चीख-पुकार करते घायलों को पहचान लेना और बचा लेना साधारण काम नहीं था।*
- *पूरा कुरुक्षेत्र भयावह दुर्गन्ध से भर गया था। ऐसी बदबू कि जहर। साफ-सुथरी हवाओं ने बन्द कर दिया था आना उस परिक्षेत्र में।"*[27]

काशीनाथ सिंह के एक अन्य उपन्यास 'महुआ चरित' में भी पात्रों के अलग-अलग धार्मिक और वैयक्तिक आग्रह से हमारा साक्षात्कार होता है। इस उपन्यास में एक स्त्री की स्वयं की खोज तो है ही, साथ ही इसमें हमारे समाज के कई संदर्भ भी प्रस्तुत हुए हैं। महुआ अपने नाम के अनुसार ही गुण भी धारण करती है। महुआ नशीला भी होता है और पोषक भी। उसी प्रकार एक स्त्री की क्षमताएँ निर्माण और विनाश के विपरीत ध्रुवों पर चलायमान होती हैं। अब यह समाज पर है कि वह उसकी क्षमताओं को कैसे इस्तेमाल करता है। उक्त उपन्यास में महुआ के संदर्भ में काशीनाथ सिंह की एक बानगी देखने लायक है-*"सारी जिंदगी तुम देश और दुनिया के बारे में ही सोचते रहे कभी अपनी बेटी के बारे में भी सोचा? तुम्हें तो यह तक पता नहीं कि तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उन्तीस या तीस, तुम जिन सहेलियों के बारे*

में पूछते हो, कितनी माएँ बन चुकी हैं और कितनी पेट से हैं? तुम यह भी जानते हो कि न दहेज दे सकते हो, न मैं वैसी शादी कर सकती हूँ। फिर तुम खुल कर क्यों नहीं कहते कि बेटी, तुम्हें जो करना है करो। हम साथ हैं तुम्हारे!"[28] यहाँ यह साफ प्रतीत होता है कि महुआ अपने प्रति, अपने भविष्य के प्रति चिंतित है, उसे जिस चीज़ की आवश्यकता है, वह उसे समय पर मिलनी चाहिए। महुआ अपने अस्तित्व की तलाश में भी बेचैन है, उसे अपनी पहचान की जरूरत है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता कि काशीनाथ सिंह ने अपने पात्रों के माध्यम से हमारे समाज का सच व्यक्त किया है। उन्होंने समाजशास्त्रीय दृष्टि से अपने पात्र गढ़े हैं। काशीनाथ सिंह का कथा-साहित्य अपने समय के सच को रचना में बंद नहीं करता, वरन् वह उसे मुक्त कर देता है। ऐसे में उनका पाठक अपने समय पर सोचने-विचारने के लिए बाध्य होता है। उन्होंने अपने समय और भूगोल को सिरजने के क्रम में धर्म, राजनीति, संस्कृति और समाज की अपनी रचनाओं में बहुत बारीक पड़ताल की है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची:

1. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-11
2. सिंह, काशीनाथ, गपोड़ी से गपशप, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-21
3. प्रफुल्ल कोलख्यान, कथा-कथांतर और कथोपरांत काशी का अस्सी, पृष्ठ संख्या-5
4. प्रकाश, उदय, आदमीनामा में आदमी, काशी पर कहन, सं-मनीष दूबे, वर्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ संख्या-323
5. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या-97
6. सिंह, कामेश्वर प्रसाद (अतिथि सं.), संबोधन, अंक-1-2,अक्टूबर-2012, जनवरी- 2013, पृष्ठ संख्या-61
7. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-132
8. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या-233
9. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-237
10. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-236
11. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-213

12. श्रीवास्तव, परमानंद, कहानी की रचना प्रक्रिया,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2012, पृष्ठ संख्या-216
13. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या 354-355
14. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या-272
15. सिंह, कामेश्वर प्रसाद (अतिथि सं.), संबोधन, अंक-1-2,अक्टूबर-2012, जनवरी- 2013, पृष्ठ संख्या-196
16. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-11
17. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-304
18. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-136
19. सिंह, काशीनाथ, कहनी उपखान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या-161
20. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-336-337
21. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-293
22. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-43
23. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-304
24. उपरिवत्, पृष्ठ संख्या-314
25. सिंह, काशीनाथ, याद हो कि न याद हो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-1992, पृष्ठ संख्या- 159
26. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-1985, पृष्ठ संख्या-16

27. सिंह, काशीनाथ, उपसंहार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2014, पृष्ठ संख्या-11-12
28. सिंह, काशीनाथ, महुआ चरित, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण- 2012, पृष्ठ संख्या-14